होली का अपना रंग और ढंग होता है। इसे सब अपने-अपने तरीके से खेलते हैं। चित्रकार रंगों के माध्यम से रंगोत्सव मनाता है तो संगीतकार होली-धमार गायन में सुरों का रंग भरता हैं। कलमकार अपनी कल्पनाओं से होली के बिम्ब उकेर कर उसमें होली की असंख्य रूपछवियों को दर्शाता है। नर्तक तो अपने होली नृत्य में रमण करता-करता इतना आत्मलीन हो जाता है कि वह स्वयं नृत्य हो जाता है। होली के कई रूप और स्वरूप हैं। यथा राम ने मर्यादा की, रावण ने अहंकार की, कृष्ण ने प्रेम की, कंस और दुर्योधन ने प्रतिशोध की होली खेली तो सूर, तुलसी और मीरा ने अगाध भक्ति की, अष्टछाप कवियों ने संकीर्तन और कबीर ने निर्गुण होली में अपने को भिगोया। महावीर सत्य-अहिंसा तो बुद्ध ने बुद्धत्व में रमण की होली खेली। प्रकृति की होली और भी अनूठी है। वह होली को सतरंगी बनाने के लिए पहले वासंती परिवेश को जन्म देती है और वन-उपवन में उमगती, पुष्पों में अपनी रूपराशि का लावण्य लुटाती, फसलों में लहलहाने लगती है और अंततः लोकार्थ के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर प्रफुल्ल होती है। यह प्रकृति ही है जो उपज के रूप में अपना उल्लास प्रकट करती है और होलिका दहन के समय भी आग की लपटों में धान्येष्टि यज्ञ का उत्सव मनाती, अपने उपज-उल्लास को अग्नि स्नान कराते हुए चट-चट की आवाजरूपी हंसी के साथ लपट-शिखाओं पर नाचती चिनगारियों में अपनी फुल्लता का आभास कराती है।

होली मात्र रंगों के खेलने का पर्व नहीं है बल्कि यह तो अन्तर्मन का उल्लास है जो अभिव्यक्ति के लिए छलक उठता है और बहुविध रूप में प्रकट होता है। वस्तुतः जो जिसके भीतर होता है वही बाहर झलकता है। प्रकृति में समष्टि हित का रंग समाविष्ट होता है तो उसी का प्राकट्य होता है। वह उसी रंग से जीव-जगत का पोषण कर होली के हुलास सी हर्षित होती है। हम भी अपने अन्तर में ऐसे रंग भरें जो न नफरत का हो, न मजहब का हो, जिसके छींटों से दूरिया मिटें, निकटता बढ़े, मन से मन मिलें, परस्पर उपयोगी और पूरक बनें, सबकी आंखों में एक गगन, एक चमन और एक चमनवाले का सपना हो और बस प्यार ही प्यार पले। मन की सब ग्रंथियां खुल जायें और सर्वत्र न्याय, धर्म, सत्य का ही रंग और उसी की तरंग हो। इन्हीं शुभकामनाओं के साथ

'स्वर सरिता' का यह अंक आपके हाथों में...